

## पूज्य लालचंदभाई का प्रवचन

भिंड, ता. ७-४-१९८९

श्री समयसार, गाथा ३१, प्रवचन नंबर P १२

यह श्री समयसार जी परमागम शास्त्र है। उसका प्रथम जीव नाम का अधिकार अर्थात् शुद्धात्माका क्या स्वरूप है और उसको पाने के लिए क्या विधि है, प्राप्त करने के लिए कैसी विधि है अर्थात् शुद्धात्माका दर्शन होते ही मोह मिथ्यात्वका नाश हो जाता है। तो ये मोह मिथ्यात्वका नाश कयुं नहीं होता है। ये अनादि काल से दो भूल है। दो भूल में एक भूलका विवेचन तो बहुत हो गया, के आत्मा अपना परिणामका भी कर्ता नहीं है। अकर्ता है। जिसको परिणाम मे कर्तृत्व बुद्धि लगती है वो तो उसकी दृष्टि बहिर्मुख रहती ही है। एक बात तो बहुत विस्तार से आ गई। पहले में अकर्ता हूं ऐसा निर्णय करना चाहिए। अकेला अकर्ता नहीं। अकर्ता तो एक धर्म है। अकर्ता ऐसा ज्ञायक तो ज्ञायकमें अनंत गुण आ जाते हैं ऐसा मैं हूं, केवल मैं ज्ञाता हूं। सर्वथा ज्ञाता हूं, कथंचित ज्ञाता, कथंचित कर्ता, ऐसे कथंचित स्वभाव में होता नहीं है। जल कथंचित शीतल और जल कथंचित उष्ण, स्वभाव में कथंचित होता नहीं है। ऐसे अग्नि उष्ण तो सर्वथा ही उष्ण है। कथंचित उष्ण और कथंचित शीत ऐसा स्वभाव में नहीं है। जो कथंचित को आगे करते हैं वो स्वभाव की दृष्टि उसमें नहीं आती। पहले अपना स्वभाव क्या है वह समझना चाहिए।

आज बाबूजीने एक सबके प्रति लाल बत्ती धरी के पहले तो भाषा बदलनी चाहिए। क्या कहा? भाव तो बाद में बदलता है। मगर भाषा ही नहीं बदलती है तो भाव कहां से बदले? तो इससे विचार आया की यह ज्ञान शिबिर में सुना है की लगभग पचास विद्वान इधर आए हैं। बहुत अच्छी बात है। खुशी की बात है। क्यों खुशी की बात है? वो अपने अपने गांव के अंदर निरंतर स्वाध्याय करते हैं। दूसरा सुनते हैं समझे? तो ये वक्ता की जवाबदारी ज्यादा है। श्रोता से ज्यादा जवाबदारी वक्ता को है। उसने तो वहीं से शुरुआत करनी चाहिए की मैं ज्ञायक होने से मैं जाननार हूं। ज्ञायक होने से मैं करनार नहीं हूं। क्योंकि करना मेरा स्वभाव में नहीं है, मेरा धर्म ही नहीं है। मेरा धर्म तो मात्र ओन्ली, फकत जानना, देखना मेरा स्वभाव है। आहाहा! वहां से शुरुआत होती है। तो ये संदेशा लेकर अपने अपने गांव में जाकर, ये कुंदकुंद भगवान का संदेशा है। ये बाबूजीका, और लालचंद भाई का संदेशा नहीं है। आत्मा स्वभाव से ही ज्ञायक है। अनादि अनंत ज्ञायक है। एक समय भी अपना अकर्ता ऐसा ज्ञायक भाव को छोड़कर कोई रागादी का कर्ता बन जाए? तीन कालमें बननेवाला नहीं है। मानता है उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। उसको सम्यकदर्शन होने वाला नहीं है। आहाहा!

तो एक बात तो चली, दो ही पाठ है, ज्यादा तो पाठ है ही नहीं। पाठ कहे, क्या कहे? पाठ, दो पाठ है। एक तो आत्मा अकर्ता ज्ञायक है। दूसरा पाठ अभी चालु हो गया की मैं जाननेवालों को जानता हूं, पर को जानता नहीं हू। वह दूसरा पाठ है, बस यहां पूर्णविराम होता है, तीसरा पाठ नहीं है। सब दो का विस्तार है। जो चार अनुयोग है ने वो दो का ही विस्तार है। और संक्षेप में दो आ गया संक्षेप करके, अपने

को क्यूं के अपनी बुद्धि कम है, अपनी बुद्धि ज्यादा, क्षयोपक्षम कम है ये कालमें तो। तो ये मैं अकर्ता ज्ञायक हूं ऐसा पहले पक्ष में तो आजा। पक्षातिक्रांत तो बाद में होगा। मगर जो पक्ष में आता है उसको पक्षातिक्रांत अवश्य होता है। अनुभव हो जाता है। मगर कर्ता का पक्षवाले को तो वो तो व्यवहार का पक्ष है उससे पक्षातिक्रांत होता नहीं है। आत्मा अकर्ता ज्ञायक, त्रिकालज्ञायक, जाननहार, जाननहार, जाननहार, बस ऐसा ही मेरा स्वभाव है। जो कुछ भी है उसको भी जानु, और होता है उसको भी जानु, है उसको भी प्रथम जानु और बाद में होने योग्य होता है उसको बाद में जानु। मगर जानु जानु जानु। बीच में करना आता ही नहीं है। जिसको सम्यग्दर्शन हो गया उसको आदि, मध्य, अंतमे, जानना ही रहता है। बीच में कोई करने का भाव आता नहीं है। करने का अभिप्राय नहीं आता है, करने का अभिप्राय नहीं आता है। भाषा में ये किया, करना ऐसा आता है मगर अभिप्रायमें, आहहा! ज्ञाता वो जो साक्षात् हो गया।

तो ये अभी दूसरा पाठ चलता है की आत्मा पर को जाननेवाला नहीं है। परको जो जानता है वो इंद्रियज्ञान है। और इंद्रियज्ञान मेरा स्वभाव नहीं है। इंद्रियज्ञान जीतने का ये पाठ है। इंद्रियज्ञान को जो जितता है उसको आत्मा का अनुभव होता है, उसका नाम जितेंद्रियजिन है। जितेंद्रियजिन है। इंद्रियों को जीतने के लिए आंख फोड़ने की जरूरत नहीं, कान में डट्टा लगाने की जरूरत नहीं। ऐसे इंद्रिय जीत नहीं होती है। इंद्रियज्ञान होने पर भी, इंद्रियज्ञान का स्वामित्व छूट जाता है। और अतीन्द्रियज्ञानमय भगवानआत्मा में स्वामित्व आ जाता है। उसका नाम इंद्रियज्ञान जितना कहा जाता है। भले इंद्रियज्ञान रहे, इंद्रियज्ञान रहने से कोई आपत्ति नहीं है, ऐसा देह भी है, कर्म भी है, राग भी है, और इंद्रियज्ञान भी है। है तो उसमें है, मेरे में नहीं है। ऐसा भेदज्ञान हो जाता है, अनुभूति के काल में। इंद्रियज्ञान और अतीन्द्रियज्ञान परमात्मा ये दो चीज भिन्न भिन्न है। अनुभव के बाद इंद्रियज्ञान ज्ञान है, ऐसा भासीत नहीं होता है। वो तो परज्ञेय है। ध्येय भी नहीं, और स्वज्ञेय भी नहीं। वो तो परज्ञेय है। आहाहा! इसलिए हेय है। उपादेय नहीं है। अर्थात् वो आत्माका, कर्ता का, कर्म भी नहीं है। आहाहा!

एक कर्ता कर्म अज्ञानमय। बाबूजीने बताया था कि एक कर्ता और कर्म अज्ञानमय होता है। और बाद में अकर्ता की दृष्टि आती है। तो आत्मा कर्ता और आत्मा का ज्ञान कर्म ऐसी सम्यक कर्ता कर्म की प्रवृत्ति भी होती है। आहाहा! कर्ता कर्म का अज्ञान कर्ता कर्म से जाता है। मगर दृष्टि अकर्ता पे आये तब, आहाहा! ऐसे अभी वो चलता है। इंद्रियज्ञान को जीतने का उपाय। इंद्रियज्ञान है, मौजूद होने पर वो मैं नहीं हूं। उससे अधिक मेरा आत्मा है। तो इंद्रियज्ञान का लक्ष छोड़कर, उसमें ममत्व छोड़कर वो मेरा है ऐसा अभिप्राय छोड़कर, वो वहां से उठकर अतीन्द्रियज्ञानमय भगवान आत्मामें परिणति आती है। तो अतीन्द्रियज्ञान के द्वारा ही अतीन्द्रियज्ञानमय आत्मा जानने में आ जाता है। तो इंद्रियज्ञान भिन्न है ऐसा भान हो जाता है।

**भिन्न-भिन्न अपने-अपने विषयोंमें व्यापारभावसे जो विषयोंको खण्डखण्ड ग्रहण करती हैं (ज्ञानको खण्डखण्डरूप बतलाती हैं) ऐसी भावेन्द्रियोंको..।** पहले द्रव्यइंद्रिय को जीतने का पाठ आ गया। अभी भावेन्द्रिय, खंडज्ञान, एक इंद्रिय का एक विषय है, दूसरी इंद्रिय का दूसरा विषय, तीसरी इंद्रिय का तीसरा विषय है। एक इंद्रियका सब विषय नहीं है। एक इंद्रियज्ञान है, भावेन्द्रिय, उसका पांच विषय नहीं है। क्या कहा? आंख से देखे भी सही और आंख से स्पर्श भी करें, और सुगंध भी आए ऐसा होता

नहीं है। एक एक इंद्रिय का विषय एक एक होता है, खंड खंड। और अतींद्रियज्ञान का विषय सारा विश्व आ जाता है। कोई बाकी रहता नहीं है। इंद्रियज्ञान क्रम क्रम से जानता है, अतींद्रियज्ञान अक्रम से जानता है। इंद्रियज्ञान क्रम क्रम से जानने से एक इंद्रिय का विषय तो जाना, मगर दूसरा इंद्रिय का विषय बाकी रह गया तो विषयका प्रतिबंध हो गया। विषय का प्रतिबंध हुआ जो जानने में नहीं आता है, उसकी इच्छा की उत्पत्ति होती है।

क्या कहा? एक इंद्रिय का विषय मात्र एक ही है। स्पर्श इंद्रियका विषय एक एक शीत, उष्ण को जानना है, मगर वो खट्टा मीठा का स्वाद स्पर्श इंद्रिय जानती नहीं है। ऐसे एक एक इंद्रियों को जानने से आत्मा का स्वभाव, ज्ञान का स्वभाव, ज्ञान की पर्याय का स्वभाव समय मात्र में स्व और पर को पूरा जानने का स्वभाव है। श्रुतज्ञान का, क्या कहा? केवलज्ञानका तो पूरा स्वभाव है, मगर जो श्रुतज्ञान केवलज्ञान का एक अवयव, अंश है। जो श्रुतज्ञान आत्माकी अभिमुख हुआ उसमें शुद्धआत्माका दर्शन हुआ। आत्मा को जाना। आत्मा, सामान्य आत्मा(को) उपादेयपने जाना। सामान्य ध्रुवतत्व उपादेयरूप से जानने में आया। तो सामान्यमें जितना अनंत गुण है वो जानने में आ गया। उसमें क्रम नहीं पड़ता है, के ज्ञानगुणको पहले जाने, दर्शनगुणको बाद में जाने, जो एक ज्ञान गुण को जाने और बाकी अनंतगुण को न जाने तो विषय का प्रतिबंध होने से इच्छा उत्पन्न होती है। इच्छा दुख का मूल है। इंद्रियज्ञान होगा, अतींद्रियज्ञानका विषय ऐसा नहीं है।

अतींद्रियज्ञान तो सारा अनंत गुणात्मक पदार्थ को एक समय में जानता है। सामान्य को तो जानता है, मगर जो विशेष पर्याय है अनंत पर्याय, अनंत पर्याय को भी ज्ञान जानता है। आहाहा! पर्याय की सन्मुख होने (से) पर जानता है ऐसा नहीं। द्रव्यकी सन्मुखता छूटती नहीं और अनंत पर्याय जाननेमें आ जाती है। और अपेक्षित धर्म नित्य अनित्य, एक अनेक, अनंत धर्म है। वो अनंत धर्मों को भी एक समयमें जान जाता है। समय भेद नहीं है और कोई विषय बाकी रहता नहीं है। आत्मा का सर्व जीतना अंदरमें विषय है, गुण, कारक भेद, पर्याय के धर्मों सब एक समयमें जाननेमें आ जाता है। जिसने शुद्ध आत्माको एक ज्ञेय को पूर्ण जाना तो वो सारा विश्व को ज्ञेयको एक समय में जान लेता है। ऐसी स्वपरप्रकाशक शक्ति आत्मा में सामर्थ्य है। इतना सामर्थ्य श्रुतज्ञान की पर्यायमें है, मगर स्वभाव और सामर्थ्य, स्वभाव की अधिकता से उपादेय तत्व जाननेमें आया। उसको सामर्थ्य प्रगट होता है। जिसको सामर्थ्य के प्रति रुचि है उसको स्वभाव के प्रति अरुचि है तो स्वभाव सन्मुख होता नहीं है। संध्याजी!

फिरसे, दूसरा पाठ चलता है इंद्रियज्ञान जीतने का। एक पाठ तो पूरा हो गया। इंद्रियज्ञान का स्वभाव ही क्रम क्रम से जानना, और एक विषय को जानना, और दूसरा विषय तो तिरोभूत हो जाता है। आच्छादित होता है, जानने में आता नहीं है, इसलिए इच्छा उत्पन्न होती है। क्योंकि ज्ञान का विषय, ज्ञान की तृप्ति तब होती है, इच्छा कब दूर होती है? के सारा स्व-पर का विषय एक समयमें जाननेमें आता है। जैसा केवलज्ञान का विषय है, उतना ही श्रुत ज्ञान का विषय है, स्व पर दो ही। स्व पर दो ही। आहाहा! केवलज्ञानमें जो बाकी रहे, जानने का बाकी रह जाए, तो श्रुतज्ञानमें रह जाए, केवलज्ञानमें कुछभी बाकी है नहीं, तो श्रुतज्ञान जो अतिंद्रियज्ञानमें जिसको आत्मा का अनुभव होता है, वो ही समय स्वपरप्रकाशक शक्ति है तो सहज वो ज्ञानमें ज्ञेय हो जाता है। ज्ञेयकी सन्मुख होता नहीं है। ज्ञायककी सन्मुखता छूटती

नहीं है। और स्व और पर सारा विश्व अंदरमें ज्ञानमें झलकता है। प्रतिभाषता है। उपयोग की जरूर नहीं है वहां, उपयोग की जरूर नहीं है।

ऐसे खंड खंड ज्ञान एक एक को जाने तो दूसरा ज्ञान का प्रतिबंध हुआ। जाननेमें रुकावट हो गई, तो दूसरा पदार्थ जानने की इच्छा हो जाती है। जैसे दो भाई बातचीत करता है, क्या बात करता है, क्या बात करता है, एसी जिज्ञासा रहती है। समझे, कोई पत्र आया तो किसका पत्र होगा, किसका पत्र होगा, जिज्ञासा होती है। जिज्ञासा क्यों होती है? आत्मा का स्वभावका ज्ञान जो ज्ञान स्वभाव है, सबको जानने का है उसमें रुकावट होती है वही दुख है, वही दुख है, क्योंकि इच्छा उत्पन्न होती है न, दूसरे पदार्थ को जाननेका प्रतिबंध हुआ ने? विषय का प्रतिबंध इसका नाम प्रतिकूलता है। पंचास्तीकायमें (१६३ गाथामें) ऐसा पाठ है। मूल श्लोक हे। ज्ञान को विषय का प्रतिबंध यानी थोड़ा जानने में आवे, बाकी जानने में न आवे, इसका नाम विषय का प्रतिबंध हुआ। वो प्रतिबंध हुआ, उसका नाम प्रतिकूलता, और प्रतिकूलता का नाम दुख है। आहाहा! दुख की परिभाषा के आत्मा का स्वभाव ज्ञान है और ज्ञान का स्वभाव आत्मा को जानने का है। जानते जानते सब जनीत जाता है। उसमें थोड़ा पदार्थ जानने में आवे और थोड़ा न जानने में आवे तो विषय का प्रतिबंध होता, तो जानने की इच्छा उत्पन्न होती है तो इच्छा दुख का मूल है। "श्रीमद् राजचंद्र"जी ने कहां, इच्छा दुख का मूल है। इच्छा की उत्पत्ति कयुं होती है? की विषय का प्रतिबंध होता है आहाहा!

ये दीवाल के पीछे क्या है? वहाँ क्या है? जानता नहीं है तो जानने की इच्छा (होती है)। मगर जिसने आत्मा जान लिया उसने सारा विश्व जान लिया। परोक्ष प्रत्यक्ष गौण कर दो। प्रत्यक्ष और परोक्ष गौण कर दो। जितना केवलज्ञान का विषय है उतना श्रुतज्ञान का विषय है। तो श्रुतज्ञान के द्वारा आत्मा को जाना, तो अनंतगुण जानने में आ गया। अनंतपर्याय जाननेमें आ गई। अनंत अपेक्षित धर्म भी जाननेमें आ गया। तो एक ज्ञेय सारा जान लिया, 'उत्पादव्ययध्रुवयुंक्तमसत्त' मैं हूं, 'गुणपर्यायवतद्रव्यम' मैं हूं। सारा एक ज्ञेय पूरा हो गया तो सारा विश्व का ज्ञेय अंदरमें जाननेमें आ गया। एक ज्ञेयको यथार्थ जाने तो अनंतज्ञेय यथार्थ उसने जान लिया। ऐसा ज्ञान की ताकत है, श्रुतज्ञान की ताकत। भरोसा आना चाहिए, अरे, ज्ञान की पर्याय का भरोसा न हो तो ज्ञान गुण की शक्ति क्या है, उसका भरोसा कहां से आवे? और गुण का भरोसा न आवे तो अनंत गुण का पिंड परमात्मा का भरोसा कहां से आवे? सब जानने में न आए, थोड़ा जानने में आवे तो इच्छा उत्पन्न होगी। आहाहा! अनुभूति के समय सब जानने में आता है, कोई जानना बाकी नहीं रहता है, इसलिए इच्छा उत्पन्न नहीं होती है। वीतरागता प्रगट होती है। आहाहा! ऐसी श्रुत ज्ञानकी ताकत है। इंद्रियज्ञान को जीतने का पाठ है, इंद्रियज्ञान को जीतने का पाठ है।

नमः समयसार का मांगलिक पहेला कलशमें राजमल्लजी "जैन धर्म का मर्मी" हो गए। चारसो (४००), साल पहले अनुभव की मुख्यता से यह संस्कृत शब्द का अर्थ क्या है वो दरकार किए बिना, आहाहा! ऐसा अनुभव की प्रधानता से अर्थ किया उसने। उसने पहले श्लोकमे कहा, प्रथम नमः समयसार का टीका करते करते "राजमल्लजी" साहब फरमाते हैं के, इंद्रियज्ञानकी जीतने की बात चलती है। उसके अनुसंधान में है, के संसारी जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल, उसमें सुख भी नहीं है, ने ज्ञान भी नहीं है और उसको जाननहार को ज्ञान भी नहीं है, सुख भी नहीं है, दो बात किया। वहां की दो बात

किया। अभी इधर की दो बात करते हैं, के आत्मा में सुख भी है और ज्ञान भी है, और उसको जाननहार को सुख भी है और ज्ञान भी है। तो जहां तेरी कार्यसिद्धि नहीं होती है, सुख भी नहीं मिलता है ऐसा ऐसा करने पर और ज्ञान भी प्रगट नहीं होता है। अज्ञान प्रगट होता है। साध्य की सिद्धि नहीं है तो जानने का जो अभिप्राय बना रखा है, जानने की जो रुचि है वो रुचि छोड़ दे। और वैक्यूम ब्रेक लगा दे, के में पर को जाननेवाला नहीं हूं, एकदफे कडाका कर दे, आहाहा! एकांत हो तो भले हो, मगर ऐसा अज्ञानी की बात तुं मत सुन, अनुभव की बात तुं सुन, की अनुभव कैसे होता है, ये अनुभव की प्रक्रिया की गाथा है। अहाहा!

अज्ञानी तो तोफान करता है। क्या पर को नहीं जानता है? क्या स्वपरप्रकाशक नहीं है? एकिला स्वपरप्रकाशक है। भैया स्वपरप्रकाशक में साध्य की सिद्धि नहीं, पर प्रकाशक में तो नहीं है, मगर स्वपरप्रकाशकमें भी ज्ञान की सिद्धि नहीं है। प्रयोजन की सिद्धि नहीं है। स्वप्रकाशक ज्ञान में साध्य की सिद्धि होती है। तो स्वपरप्रकाशक व्यवहार का जन्म होता है। स्व को जाने तो निश्चय और स्व पर दोनों को जाने सो व्यवहार। क्या कहा? स्व को जाने सो निश्चय, और स्व-पर दोनों को जाने सो व्यवहार, मगर भेद अपेक्षा से बारमी (१२) गाथा में व्यवहार जानेला प्रयोजनवान है। आहाहा! मगर वो पर्याय को जब जानता है उसकी मुख्यतासे कहा के साधक सविकल्पदशा में पर्याय को जानते हैं, तो अकेली पर्याय को नहीं जानता है। स्वपरप्रकाशक को जानता है, अर्थात् स्वपरप्रकाशक ज्ञान को ही जानता है, पर को जानता नहीं है।

क्या कहा? इसको (काचको) ज्ञानी जानता है, इसको समझे? तो इसको जानता है? इसको नहीं जानता है। तो किसको जानता है? जो वो ज्ञेय ज्ञानमें झलकता है, वोही समय वो ज्ञान आत्मा को जानता है, वो ज्ञान आत्मा का कर्म है इसलिए स्वपरप्रकाशक ज्ञान को जानता है, पर को जानता नहीं है। तेरे को स्वपरप्रकाशक चाहिए ना? ले ये स्वपरप्रकाशक का स्वरूप है। अज्ञानी मानता है, जानता है ऐसा स्व-परप्रकाशक नहीं है। आहाहा! मार्मिक बात है।

मगर संध्याबेन ने कहा, जब मैंने आने का इधर विचार किया, पहले तो मैं ना बोलता था। मेरा तो विषय सूक्ष्म है, और यहां चले ना चले तो स्थूलमें, ऐसा भाव घूटाता है ऐसा ही भाव आता है ना, स्थूलभाव घूटाता नहीं तो स्थूलभाव आता नहीं है। तो वहां ठीक पड़ेगा? तो कहे हा, जितना सूक्ष्म कहना है वो यहां कह देना। हमारा भींड का मुमुक्षु पकड़ लेगा। इसने गेरेंटी दिया मेरेको। अच्छा, तो मैं आता हूं। भिंड का तो नाम है, सब मुमुक्षु का है। यह भिंड की शिबिर है इसलिए भिंड कहा है। बाकी तो सब गांव गांव से बहुत लोग आया है। आहाहा! एक दफे इंद्रियज्ञान को जीता। "राजमल्ल जी साहब" कहते हैं के तेरा प्रयोजन की सिद्धि पर को जानने से तीन कालमें नहीं होगी।

हमारा एक पुत्र है, बड़ा पुत्र, उसकी अभी उमर ५८ साल है। १० साल पहले मुंबईमें उसने कहा पिताजी! आप कहते हो कि आत्मा पर को नहीं जानता है। तो आप के प्रत्ये बहुत हल्ला मच गया है, बहुत हल्ला सारा हिंदुस्तानमें। आपके साथ में कोई है नहीं, ऐसे लगता है कि कोई हो तो गुप्त होगा। वो तो ठीक है। तो ये क्या बात है? और आपके पास कोई न्याय, कोई तर्क, कोई है आपके पास? बताओ हो तो मेरे को। हां है, मगर मैं शास्त्र का आधार मैं नहीं दूंगा, गाथा का आधार मैं नहीं देनेवाला हूं, नय,

निक्षेप, प्रमाणकी बात मैं नहीं करूंगा, निश्चय से ऐसा, ने व्यवहार से ऐसा नहीं बोलूंगा। अच्छा तो तो बहुत बढ़िया है।

मैंने कहा सुन, तेरी ४८ साल की उम्र है, १० साल पहले की, तो ये तूने आंख से कितना देखा? तो कहे बहुत देखा। कानसे कितना सुना? तो कहे बहुत सुना। यानी पर को जानते जानते यह जिंदगी चली गई, तो मैं पूछता हूं की तेरे को आनंद आया? तो कहे आनंद तो नहीं आया। आनंद नहीं आया तो परको जानना विभाव मान ले। ये अनुभव से सिद्ध होती है (बात) प्रत्येक जीवको। पूछ लो अपने आत्मा को। अपने आत्मा को पूछ लो की पर को जानना जो स्वभाव हो तुंने मान रखा है। इंद्रियज्ञान तेरे पास है, इंद्रियज्ञान तो पर को जानता है। तो पर को जानते जानते कभी तीनकाल में आत्मा का आनंद आता नहीं है। तो वहां से व्यावृत हो जा, व्यावृत हो जा। एक दफे कोशिश तो कर के क्या होगा। आहाहा! के में पर को नहीं जानता हूं। व्यवहार का निषेध किया और उपयोग आत्मा में आ जाता है। आहाहा! एक चिदानंद आत्मा ही जानने में आ रहा है। सचमुच तो अज्ञानी को भी ज्ञान ही जानने में आता है। ज्ञेय जानने में आता नहीं है। क्या कहा अभी? के अज्ञानी को भी ज्ञान ही जानने में आता है और परज्ञेय जानने में नहीं आता, ये क्या बात है? इसमें तो शास्त्र का आधार चाहिए। इसमें तो शास्त्र का आधार देता हूं।

ये "राजमल्लजी साहेबने" २७१ नंबर का कलश बनाया। उसमें फरमाते हैं ये जैन मत अनुयायीके लिए कलश है। अन्यमति तो छ द्रव्य को मानता नहीं है, उसको डिस्काउंट हो गया। अन्यमति तो उसमें बाद हो गया। अभी जैन हो गया, जैन में आया, ये मैं ज्ञाता ने षटद्रव्य मेरा ज्ञेय ऐसी भ्रांति अनादिकाल से आ रही है। भ्रांति लिखा, व्यवहार नहीं लिखा, क्योंकि अनुभव के पहले व्यवहार होता नहीं है, पहले भ्रांति होती है। भ्रांति का क्या अर्थ है? ये ज्ञेय है, मैं ज्ञाता हूं, ये ज्ञाता ने ए ज्ञेय। तो उसने क्या भूल किया? ज्ञाता ज्ञान तो इधर स्थापा, ज्ञान तो इधर रखा, ज्ञान तो इधर रखा, और ज्ञेय उधर (बाहर) स्थाप दिया, समझे? तो जो वो ज्ञान की पर्याय है, ज्ञायकको अभी एक बाजू पर रखो। ज्ञान की जो पर्याय है उसमें अकेला ज्ञान ही धर्म है के ज्ञेय धर्म है के नहीं हैं? है प्रमेयत्व है। ज्ञान की पर्याय की बात में कहता हूं हों, डबल्ल धर्म है, ज्ञान भी है और ज्ञेय भी वो ही है, समझमें आया कुछ?

तो तेरी ज्ञान की पर्याय में ये ज्ञेय जानने में आया तो इधर ज्ञान रखा और इधर ज्ञेय स्थापा। तो तेरी भूल क्या हो गई? के इधरसे (अंदरसे) ज्ञेय को उथाप दीया, इधर से ज्ञेय को हटा दिया। क्योंकि, हिंदी में मदद करें बाबूजी तो ठीक, गुजराती में तो बहुत फलो आता है सरखा मगर शब्द की..। उसने भूल क्या किया? की ज्ञेयको यहां स्थाप दीया। ज्ञान तो रखा, ज्ञान तो उड़ाया नहीं, ज्ञान तो उडाया नहीं मगर उसने क्या उड़ाया? ज्ञान का दो धर्म, ज्ञान और ज्ञेय उसमें से एक ज्ञेयको निकाल दिया और एक ज्ञेयको निकालकर इधर स्थाप दिया। तो ज्ञेयको निकाला तो ज्ञान ज्ञान को जानने में आता नहीं है। जब ज्ञेय स्थापेगा, तो ज्ञान ज्ञान को ही जानता है। और ज्ञान ज्ञान को जानता है तो ज्ञायक भी जानने में आ जाता है। क्योंकि ज्ञायक और ज्ञान कथंचित अभिन्न है।

फिर से, महत्व की बात है, प्रयोजनभूत बात है। और भाव तो इसलिए आता है कि इधर 50 विद्वान आया है। विद्वान जैसे भाई साहब ने कहा कि पहले शब्द तो फिरना (चाहिये) भाव तो भले बाद में फिरे, आहाहा! वो लेकर इधर से जाए, क्योंकि थोड़ा प्रभावनाका भी हमारा भाव रहता है। आहाहा!

फिर से बात निकालता हूँ की अज्ञानी जीव लेना, अज्ञानी जीव। भले अज्ञानी हो, आत्मा अनुभव न हो तो कोई तकलीफ नहीं है मगर ये प्रक्रिया जो जानेगा तो उसको आत्मा का अनुभव हो जाएगा। ज्ञान की पर्याय प्रगट होती है, ये ज्ञेय है समझे? ये ज्ञेय हे सारा, ये ज्ञेय है, ये ज्ञेय है ने, ये ज्ञेय है, और ज्ञान इधर। तो अज्ञानी जीवने ज्ञान तो इधर रखा और ज्ञेय बाहर स्थापा। तो इसने क्या भूल किया? की ज्ञान ज्ञान भी है, और ज्ञान ज्ञेय भी है। दो धर्म एक में है, एक ज्ञान की पर्याय में दो धर्म है। आहाहा! जो ज्ञान की पर्याय में दो धर्म नहीं हो तो ज्ञान ज्ञान को जान सकते ही नहीं। दो धर्म एक साथ युगपद है। युगपद ज्ञान का स्वभाव जानना भी है और ज्ञान में ज्ञान जनाई ऐसा स्वभाव ज्ञान की पर्याय में भी है।

अभी पर्याय की बात चलती है। भेदसे मैं समझता हूँ, बाद में अभेद मैं चला जाता है ज्ञान। समझने के लिए भेद करना पड़ता है। है तो अभेद, द्रव्य और पर्याय, ज्ञान और ज्ञायक जुदा नहीं है। कथंचित एक है तो भी समझने के लिए भेद करके समझा जाता है। के भूल क्या किया? के इधर तो ज्ञान स्थापा और इधर (पर मे) ज्ञेय स्थाप दीया। तो (ज्ञान मे से) ज्ञेय को उथाप दीया तो ज्ञान ज्ञान को जानता है वह भूल जाता है और जहां ज्ञेय स्थापा वहीं उसका लक्ष जाता है। समझ में आया? जहां ज्ञेय उसने स्थाप दीया, इधर तो उथाप दिया, उथाप दिया, समझे ने? उसमें से निकाल दिया, नहीं मानता है। मैं ज्ञान हूँ मगर ज्ञेय तो वहां है। मैं ज्ञान हूँ मगर ज्ञेय मैं नहीं हूँ। ज्ञेय तो यह (पर) है। (स्व) ज्ञेय का, आहाहा! इतना अनादर कर दिया। एक धर्मका अनादर किया तो धर्म का अनादर हो जाता है। क्या कहा? एक धर्म का अनादर किया आत्मा ने, "मैं ज्ञान तो हूँ मगर ज्ञेय मेरा वहां है"। और जहां अभिप्राय मैं ज्ञेय स्थापा है, वहीं उपयोग चला जाता है इसका नाम इंद्रियज्ञान है। और इंद्रियज्ञान को जितना हो तो क्या करना? के मेरा ज्ञान भी मेरे में है और मेरा ज्ञेय भी मेरे में है। मेरा ज्ञेय ज्ञान से जुदा ज्ञेय होता नहीं है। धर्म से धर्म जुदा होता नहीं है। ज्ञान धर्म है उसका धर्म ज्ञान भी है और ज्ञेय भी है। तो उसको जानने का उत्साह मिट जाता है। ज्ञेय को जाननेका, परज्ञेयको जानने का (उत्साह मिट जाता है)। क्योंकि ज्ञेय मेरे पास है तो मैं ही ज्ञान के द्वारा मैं ही ज्ञान को जानू। अभेद से ज्ञायक को जानु। ऐसा जो ज्ञान जानने में आता है। अज्ञानी को भी समय-समय पर ज्ञान ही जानने में आता है। ज्ञेय जानने में नहीं आता है तो भी उसको भ्रांति हो गई। मे ज्ञेयको जानता हूँ। भ्रांतिका अर्थ समझे? भ्रांति, ऐसा है नहीं। जानता है ज्ञान को और मानता है ज्ञेयको। इसका नाम भ्रांति है। ज्ञान को ही जानता है। ज्ञान ज्ञानको जाने बिना ज्ञान की उत्पत्ति ही नहीं होती है। बहुत मार्मिक है, बहुत सूक्ष्म है। आहाहा!

इतना अवसर कभी आता है? कभी-कभी आता है। अवसर आ गया। की यह जो ज्ञान की पर्याय है, वह ज्ञान की पर्याय ज्ञान की पर्याय को जाने बिना, और ज्ञान की पर्याय ज्ञायकको जाने बिना एक समय जाता नहीं है, मगर वो मानता नहीं है। वो तो ये मानता है की यह ज्ञेय जानने में आता है। जानता है ज्ञान को और मानता है ज्ञेयको, उसका नाम भ्रांति, इसका नाम भ्रांति। भ्रांति हो गई। आहाहा! भ्रांति ही संसार है और जब श्री गुरु आत्मज्ञानी गुरु मिलता है अरे भैया, ये तु क्या करता है? तो कहे साहेब ज्ञान तो मेरे पास है, मगर ये लोकालोक ज्ञेय है मेरा। ये तेरा ज्ञेय नहीं है। तो साहेब जो मेरा ज्ञेय नहीं है उसको मैं नहीं जानू तो स्वपरप्रकाशककी सिद्धि नहीं होगी। अच्छा, तेरे को स्वपरप्रकाशक ज्ञान चाहिए, हां साहेब स्वपरप्रकाशक ज्ञान चाहिए, क्योंकि अज्ञानी सब हमको मैं कहता हूँ कि एक स्वपरप्रकाशक है, स्व-

प्रकाशक से ज्ञायककी सिद्धि होती है। तो चिल्लाता है, समझे? तो एकांत हो जाएगा। एकांत हो जाएगा। आहाहा! तो मैं क्या करूं?

स्वपरप्रकाशक ज्ञान है। तुजे स्वपरप्रकाशक ज्ञान चाहिए? सुन के ये ज्ञान की जो पर्याय है उसमें ज्ञान भी है और ज्ञेय भी है, वहां आ जा, वो उसको (पर) थोड़े टाइम के लिए गौण कर दे। मैं (परको) जानता नहीं हूं इसे पहले कर दे, बाद में आ जाएगा। बाद में स्वयं आ जाएगा। वो भी क्या करे, कहेना पड़ता है। बाद में आता नहीं है, बाद में भी होता नहीं है, बादमें परको जाननेका आता ही नहीं है। मगर क्या करें समझाने के लिए, थोड़ा ये बालक झगड़ाखोर बहुत हो गया, कजियारा को क्या कहते हो, झगड़ाखोर। तो आहिस्ता आहिस्ता, आहिस्ता आहिस्ता, थोड़ा धीरे धीरे उसको समझाने का तरीका है। आहाहा!!

के देख, पहले तेरे ज्ञान में ज्ञान जानने में आता है। क्रोध जानने में आया।

अच्छा, क्रोध किसने जाना?

के ज्ञानने जाना।

तो ज्ञान ज्ञानने जाना कि नहीं जाना?

अरे क्या बात है! हां ज्ञान ज्ञान को जानते जानते क्रोध को जानता है।

अच्छा! ज्ञान ज्ञानको जानते जानते क्रोधको जानता है, यहां तक तो आया?

तो कहे हा।

अभी इतना कर, इतना कर की ज्ञान ज्ञान को ही जानता है, क्रोध को जानता नहीं है। बस इतनी देर है।

अच्छा, ऐसा करूं?

भले करो, भैया, कर ले तेरे हितकी बात है।

अच्छा, अभी क्रोध नहीं जाननेमें आता है। ज्ञान की पर्याय ज्ञान की पर्याय में जानने में आ रही है।

अभी एक स्टेज बाकी है। थोड़ा सा बाकी है।

तो ज्ञान किसका है?

आत्मा का है।

ज्ञान ज्ञेयका नहीं?

की नहीं है।

क्रोध का ज्ञान है?

तो के नहीं है।

तो ज्ञान किसका है?

आत्मा का है। तो आत्मा का ज्ञान है तो आत्मा जानने में आ जाता है, इसका नाम अनुभव है। आहाहा!! एसे इंद्रियज्ञान जीतने का ये तरीका है। ९:१५ से १०:१५ तक है ना, १०-३० तक है। अच्छा, ठीक है, अच्छी बात है सबकी रुचि का द्योतक है। कंटाला नहीं है। सुनने का भाव आता है।

तो भिन्न-भिन्न अपने-अपने विषयोंमें व्यापारभावसे जो विषयोंको खण्डखण्ड ग्रहण करती हैं।



एक एक विषय को ग्रहण करता है तो ज्ञान खंड खंड हो गया। अखंड नहीं रहा, अखंड, अखंड को जानना चाहिए। अखंड भगवानआत्मा को जानने को भूल गया और पर ज्ञेयको एक एक इंद्रिय का विषय को जानता है। एक को जानता है तो दूसरे का जानने का बंध हुआ। तो दूसरे को जानने की इच्छा होती है। अभी इंद्रियज्ञानमें इच्छा ही उत्पन्न होती है। इंद्रियज्ञान आकुलताका उत्पन्न करनेवाला है। इंद्रियज्ञानमें एकांते दुख ही है। अतींद्रियज्ञानमें एकांत सुखी है। आहाहा!!

**(ज्ञानको खण्डखण्डरूप बतलाती हैं) ऐसी भावेन्द्रियोंको, प्रतीतिमें, श्रद्धा में, प्रतीतिमें आनेवाली अखण्ड एक चैतन्यशक्तिताके।** वहां खंड लिया, सामने चैतन्यशक्तिको अखंड लिया। अखंड को जानता ज्ञान अखंड हो जाता है। पर को जानते जानते इंद्रियज्ञान खंड खंड हो जाता है। आहाहा! अज्ञान हो जाता है इंद्रियज्ञान = अज्ञान है। आहाहा! बात वह है पहले अनुभव के पहले क्या करना और अनुभव के बाद क्या होता है। अभी अनुभव के बाद क्या होता है यह मत सोच, अनुभव कैसे होवे वह पहली बात जान ले। आहाहा! अनुभव के बाद तुं अनुभवी होगा तो किसीको पूछने की जरूरत नहीं रहेगी। आहाहा!

ये सारा ४५ साल गुरुदेव ने जो प्रवचन दिया वो अनादि मिथ्यादृष्टि जीवको सामने रखकर, उसको आत्मा का अनुभव कैसे हो उसकी मुख्यता से वो प्रवचन दिया। आहाहा! बाद में गुणस्थान अनुसार उसको शुभभाव आएगा। वो बात उसने छेड़ी नहीं। पहले सम्यग्दृष्टि तो बन जा, बाद में व्यवहार, क्या गुणस्थान है पंचम गुणस्थानमें, छठा गुणस्थानमें क्या आएगा, चौथा गुणस्थान तो आया नहीं, पंचम गुणस्थान की शुभभावकी प्रैक्टिस करते करते कर्ताबुद्धि हो जाती है। मिथ्यात्व दृढ़ हो जाता है। आहाहा! ऐसा करना ने ऐसा नहीं करना। अरे! ऐसा जानना ने ऐसा नहीं जानना, ये भी नहीं। एक को जानना है। आहाहा! ये ४५ साल उपदेश गुरुदेवने किया। प्रथम आत्मा को जान, प्रथम तो आत्मा को जान और जाणेलाका श्रद्धान हो जाएगा। बिना जाने हुए का श्रद्धान होता नहीं है। पर को जानने में रुका तो पर की श्रद्धा हो जाएगी। पर मेरा, पर मेरा ऐसा श्रद्धान हो जाएगा। जाणेलाका श्रद्धान होता है ये नियम है। और स्व को जानते तो स्वकी श्रद्धा बनती है। पर को जाने तो पर मेरा ऐसा विपरीत श्रद्धान हो जाता है। इसलिए इंद्रियज्ञान को जीत ले। कैसे जीते?

कि **प्रतीतिमें आनेवाली अखण्ड एक चैतन्यशक्तिताके द्वारा सर्वथा अपनेसे भिन्न जाना,** इंद्रियज्ञानको, शास्त्रज्ञानको, कथंचित भिन्न जाना नहीं। आहाहा! कथंचित का प्रयोग कर करके दृष्टि का विषय उसको हाथ में आता नहीं है। कथंचित का जन्म तो अनुभूति के बाद होता है। अज्ञानी के पास कथंचित होता नहीं है। सर्वथा होता है। अज्ञानी के पास सर्वथा पर मेरा है ऐसा ही होता है। कथंचितका स्यादवादका जन्म तो अनुभव के काल में जन्म होता है। सम्यक एकांतपूर्वक अनेकांत होता है। अनुभव के पहले अनेकांत का ज्ञान, स्यादवाद का ज्ञान कथंचित भिन्न, कथंचित अभिन्न आता नहीं है। आहाहा! ये सब अतींद्रियज्ञान प्रगट होता है उसमें मालूम पड़ जाता है।

**चैतन्यशक्तिताके द्वारा सर्वथा अपनेसे भिन्न,** ये जैनदर्शन में सर्वथा शब्द कहां से आया। जैन दर्शन है तो अनेकांतवाद है। कथंचित होना चाहिए, इंद्रियज्ञान कथंचित भिन्न होना चाहिए। कथंचित भिन्न उसका क्या कारण है। बोलता है कथंचित भिन्न, मानता है सर्वथा अभिन्न, इसलिए कथंचित का प्रयोग

ज्ञानी के पास में कहलाता है। आप कहो जरा कथंचित की बात कहो, नहीं तो एकांत हो जाएगा। निश्चयाभासी हो जाएगा। अरे, स्वतंत्र हो जाएगा, उठ जाएगा और सिद्घालय में चला जाएगा। आहाहा!

एक दृष्टांत दिया "सोगानीजी साहेबने" एक दृष्टांत दीया। एक पोपट था। आपकी भाषा में क्या बोलते हैं। तोता, तोता उड़ते उड़ते एक भूंगडी थी, तो भूंगडीमें लटक गया, तो भूंगडी पकड़ लिया तो उल्टे शीर (माथा) हो गया। उल्टा शीर, क्या सिर नीचे और पैर ऊपर तो उसको छोड़ूँ तो मर जाऊँ, छोड़ दूँ तो मर जाऊँ। पकड़ रखा, उसमें दूसरा तोता आया, दो, तीन, चार, आए। ये तुं क्या करता है? मैंने यह पकड़ा है, तो अभी छोड़ूँ तो मर जाऊंगा। छूटता नहीं है। छोड़ दे, तो जिंदा रहेगा, मरेगा नहीं। देख मेरे सामने देख, मेरे सामने देखके तुं तेरे सामने देख तो बल जाएगा। तो छोड़ दिया उसने, छोड़ दिया तो उड़ गया के मर गया? (उड़ गया) ऐसे व्यवहार का पक्ष पकड़ लिया है, ज्ञानी कहता है छोड़ दे व्यवहार का पक्ष, परमात्मा बन जाएगा। आहाहा!

व्यवहार भले बाद में छूटे, मगर व्यवहार का पक्ष तो एक समय में छूटता है। अनुभूति के काल में छूट जाता है। व्यवहार का पक्ष मिथ्यात्व है। आहाहा! व्यवहार मिथ्यात्व नहीं है। व्यवहार तो जानेला प्रयोजनवान, वह भी थोड़ी देर के लिए। वो भी कहना पड़ता है, बाकी तो जाननहार २४ घंटे जानने में आता है। आहाहा! छूटता ही नहीं है, आत्मा को जानना, नींद में भी साधक आत्मा को ही जानता है पर को जानता नहीं है। जनित जाता है। वह अलग बात है मगर जानने का पुरुषार्थ परका नहीं है। स्वको जाने उसका नाम पुरुषार्थ है, बाकी केवलज्ञान में होगा तब लोकालोक जानने में आ जाएगा। चिंता मत कर, मगर, आहाहा! उसको विश्वास नहीं आता है। पर को जानने का विश्वास आया, मगर क्रोध के जाननेके समय ज्ञान जानने में आता है, वो भूल जाता है। क्रोध जानने में आता है।

अरे! ऊर्ध्वपने तो जो ज्ञान, ज्ञान को न जानता, तो क्रोध को भी नहीं जानता है। सूक्ष्म बात है। ज्ञान ज्ञान को न जाने तो क्रोध भी जानने में नहीं आता, इसलिए ज्ञान ज्ञान को जानता है तो क्रोध भी जानने में आता है। ऐसी ज्ञान की पर्याय में स्वपरप्रकाशक शक्ति से तो ले। स्वप्रकाशक तो बाद में, आहाहा! के ज्ञान की पर्याय में क्रोध जानने में आया, तो किसने जाना? तो के जानने जाना। ज्ञान ज्ञान को जाने, जानते जानते क्रोध को जानता है। ज्ञान ज्ञान को नहीं जाने और क्रोध को जाने, ऐसी विश्व व्यवस्था है नहीं।

एक दफे ज्ञान जानने में आता है, क्रोध जानने में नहीं आता है। ऐसे पक्ष में तो आओ। पर्याय स्वभाव का पक्ष में तो आओ, द्रव्य स्वभाव का पक्ष तो बाद में। आहाहा! मगर ज्ञान की पर्याय जानने में आती है तो ज्ञान की पर्याय किसकी है? तो के आत्मा की है। तो आत्मा और ज्ञान कथंचित अभिन्न होने से ज्ञान को जानता है तो आत्मा को जान लेता है। ज्ञेय को जानने में रुकता है तो उसको आत्मा जानने में आता नहीं है। सर्वथा की बात है। सर्वथा भिन्न जाना, राग तो सर्वथा भिन्न ही है। उसमें अभी समझ में नहीं आता लोगों को के सर्वथा भिन्न नहीं कहो रागको, कथंचित भिन्न अभिन्न कहो। आहाहा!

जो इंद्रियज्ञान सर्वथा भिन्न है तो राग तो सर्वथा भिन्न हो गया। तुं कुंदकुंद भगवान को मानते हैं कि नहीं? तो कुंदकुंद भगवान फरमाते हैं कि शास्त्रज्ञान आत्मा से सर्वथा भिन्न और आत्मज्ञान से भी सर्वथा भिन्न। क्या कहा? शास्त्रज्ञान, इंद्रियज्ञान भगवानआत्मा से सर्वथा भिन्न, और आत्मा को प्रसिद्ध करनेवाला अतींद्रियज्ञान उससे भी सर्वथा भिन्न है। एकताबुद्धि टूट जाती है। अनुभूति हो जाती है। इंद्रियज्ञान रह जाता

है। क्या कहा? इंद्रियज्ञान के साथ एकत्वबुद्धि टूट जाती है। आत्मा के साथ एकत्वपना हो जाता है। और इंद्रियज्ञान भिन्न भिन्न जानने में आया। इंद्रियज्ञान भिन्न, भिन्नरूप जानने में आता है। जैसे राग भिन्न जानने में आता है, जैसे ये ज्ञेय भीन्न है, ऐसे ही इंद्रियज्ञान ऐसा ही भिन्न है। जैसे दीवार भिन्न है ऐसे इंद्रियज्ञान भिन्न है। इसका ऐसा बल आए बिना एकत्वबुद्धि टूटेगी नहीं।

सर्वथा शब्द इसमें है। तलाटीजी! इसमें लिखा है। सर्वथा भिन्न जाने, जब अंतर्दृष्टि हुई, प्रतीति में आ गया आत्मा अखंड, अखंड प्रतीतिमें आया तो अखंडमें खंडका अभाव है। अखंडमें खंडका अभाव। ये द्रव्येन्द्रिय जैसा भावन्द्रिय है। बाबूजी क्या कहा, यह जैसे द्रव्येन्द्रिय है ने जड जड, ऐसे भावन्द्रिय जड है, चेतन नहीं है। आहाहा!!

ग्यारह भाग बाहर पड़ा है, उसमें १० भाग में प्रवचन रत्नाकर उसमें गुरुदेव का एक व्याख्यान है, ३९० से ४०४ गाथा है। पहले गाथा पढ़ूँ तो आपको ख्याल में आ जाएगा। यह सब व्यवहार का लोप करनेवाला लगता है सोनगढ़। अरे, लोप करेगा तो आत्मा का दर्शन होगा। लोभ करेगा व्यवहार का तो आत्मा का दर्शन होनेवाला नहीं। लोप में दर्शन है। लोभमें अदर्शन है। ज्ञानी का जन्म व्यवहार का निषेध करने के लिए जन्मता है। क्योंकि व्यवहार का पक्ष है ने अनादिकाल का, आहाहा! और वह बल कहां से आता है, सचमुच तो अनुभव से बल आता है। तो भी समाज के लिए देखो गुरुदेव, देखो ११वीं गाथा, भैया, व्यवहार सघडोय अभुतार्थ है, क्योंकि अनुभवीको सब कबूल नहीं करता है। कोई कोई कबूल करें, अनुभवीको सब लोग कबूल नहीं करें तो अनुभवी क्या करता है? के शास्त्र का आधार देते हैं, देखो भैया! ये कुंदकुंद भगवान ने लिखा है, समझमें आया। तो इसमें ३९० से ४०४ गाथा, अच्छा। मूल श्लोक पढ़ंगा तो इसमें सब आ जाएगा, उसका हरिगीत है। ३९०, ३९१ गाथा दो गाथा में सब सार आ जाता है।

**रे! शास्त्र है नहीं ज्ञान, क्योंकि शास्त्र कुछ जाने नहीं।**

रे! आहाहा! अरे रे! शास्त्र से ज्ञान नहीं होता है और शास्त्र का ज्ञान नहीं होता है। ज्ञान तो ज्ञायक का ही होता है सबको, कभी, तीनों काल, आहाहा!

**रे! शास्त्र है नहीं ज्ञान, क्योंकि शास्त्र कुछ जाने नहीं।**

**इस हेतु से है ज्ञान अन्य रु शास्त्र अन्य – प्रभू कहे ॥३९०॥**

जिनेंद्र भगवानने फरमाया। पहले शास्त्र की बात किया, क्योंकि ये पंचमकाल है ने, तो देशनालब्धि निरंतर नहीं मिलती, मगर शास्त्र तो निरंतर मिलता है। आहाहा! जिनवाणी, जिनवाणी नित्यबोधक है। हा, पंचमकाल के छेड़ा तक ये शास्त्रों तो, जिनवाणी तो रहनेवाली है। मगर ज्ञानीकी देशनालब्धि तो कब कब मिलती है। इसलिए पहला श्लोक शास्त्र का लिखा। पहला श्लोक शास्त्र का लिखा बाद में, **रे! शब्द है नहीं ज्ञान**, देशनालब्धि जो शब्द है, वो ज्ञान नहीं है। **क्योंकि शब्द कुछ जाने नहीं।** आहा! जो कई जानता नहीं उसके पास ज्ञान लेने जाता है, ये (शास्त्र) कुछ जानता नहीं उसके पास ज्ञान लेने जाता है। उसमें ज्ञान तो है नहीं। इसमें ज्ञान नहीं है। इसके पास क्यों जाता है। ज्ञान तो इधर (आत्मामें) है, उसको तो देखते ही नहीं। आहाहा!

रे! शब्द है नहीं ज्ञान, क्योंकि शब्द कुछ जाने नहीं।

इस हेतुसे है ज्ञान अन्य, रु शब्द अन्य - प्रभू कहे ॥३९१॥

इसके ऊपर गुरुदेव का व्याख्यान है, अभी पढ़ा मैंने, गुरुदेव ने फरमाया है, शास्त्र का लक्षवाला जो ज्ञान है वो जड़ और अचेतन है। इंद्रियज्ञान अचेतन है। अभी पढ़ा मैंने, आहाहा!! शास्त्रका लक्ष वाला जो ज्ञान है वह जड़ और अचेतन दो विशेषण लगाया। आहाहा! जड़ कयुं? ज्ञान अपने आप को जानते ही नहीं है। इंद्रियज्ञान अपने को नहीं जानता है। जड़ को जानता है तो जड़ है। जड़ को जाननेवाला ज्ञान जड़ है, और अचेतन को प्रसिद्ध करनेवाला ज्ञान अचेतन, जड़ और अचेतन है। आहाहा! जैसा निमित्त ऐसा ही नैमित्तिक। क्या कहा? वो शास्त्र का लक्षवाला ज्ञान स्वाभाविक नहीं है। नैमित्तिक है के नहीं? उसमें तो हा बोले सब, के नहीं है नैमित्तिक, स्वाभाविक है? अचलजी! (नहीं नैमित्तिक है)। तो नैमित्तिक है तो जैसा निमित्त ऐसा ही नैमित्तिक होता है। वो जड़ तो वो भी जड़। जैसे पुद्रगल जड़, तो पुद्रगलका लक्षवाला होनेवाला राग भी जड़। आहाहा! पांच महाव्रत जड़, हाय, हाय, वो बात मत करो, वह बात मत करो, आहाहा!! प्रभु अवसर आया है। ऐसा मत कर, (ना मत बोल) तेरी बात है ऐसा (हा) कर। थोड़ा ऐसा कर, बाद में ज्यादा करेगा। थोड़ा तो हा पाड, हा पाड तो हालत हो जाएगी। मैं ज्ञानमय आत्मा हूं। समय समय मेरा ज्ञान ही जानने में आता है। ज्ञेय जानने में आता नहीं है। क्योंकि ज्ञान के साथ ज्ञायकका तन्मयपना हैं, तो जो जिसके साथ तन्मय है वह जानने में आता है। जो भिन्नत्व है, तन्मय नहीं है। सचमुच जानने में आता नहीं है। तो क्या कहा अभी, **अखण्ड एक चैतन्यशक्तिताके द्वारा सर्वथा अपनेसे भिन्न जाना।** इंद्रियज्ञान को अनुभवके कालमें वो भिन्न प्रतीत में आ गया की इंद्रियज्ञान मेरा भाव नहीं है। स्वामित्वबुद्धि छुटती है। तो कर्ता कर्म भी छूट जाता है। और ज्ञाता होने से इंद्रियज्ञान ज्ञेय होता है। मगर कर्ताका कर्म नहीं होता। क्या कहा? इंद्रियज्ञान को जब भिन्न जाना तो कर्मपने जानाके ज्ञेयरूप जाना। तो कहे ज्ञाता को कोई कर्म होता नहीं है। ज्ञाता का कोई कर्म होता नहीं है। ज्ञेय होता है और वो भी व्यवहार ज्ञेय है। आहाहा!! थोड़ी देर के लिए, कायम के लिए उसको जानना आत्मा का स्वभाव नहीं है। उसको जानने से सविकल्प दशा आ जाएगी। फिर निर्विकल्प ध्यान के कालमें वो जानना बंद करके साधक उपयोग अंदर ले जाता है तो फिर से निर्विकल्प ध्यान आ जाता है। टाइम हो गया।

